RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-06
June-2019
ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

पालि एवं समकालीन ग्रन्थों में वर्णित दास–प्रथा

[1]आरती [2]डॉ. जयवीर सिंह

[1]शोध–छात्रा, ओ.पी.जे.एस. विश्वविद्यालय, चुरू (राजस्थान)
[2]एसोसिएट प्रोफेसर, ओ.पी.जे.एस. विश्वविद्यालय, चुरू (राजस्थान)

भारतीय समाज में दास प्रथा का प्रचलन अति प्राचीन काल से है। हड़प्पा युगीन समाज में भी इस प्रथा के अस्तित्व का अनुमान लगाया जाता है। वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा स्मृति आदि सभी ग्रंथों में दास दासियों का उल्लेख हैं। कौटिल्य के अनुसार यदि म्लेच्छ अपनी संतान का विक्रय करें अथवा उन्हें बंधक बनवा दें तो वे दंड के भागी नहीं होते। किन्तु आर्य को दास नहीं बनाया जा सकता। मनु ने शूद्रों को दास बनाने की व्यवस्था की है। उसके अनुसार शूद्रों का क्रय करना चाहिए। बौद्ध पालि ग्रंथों में तत्कालीन समाज में प्रचलित दास प्रथा से सम्बद्ध विवरण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। प्राचीन भारत में दास प्रथा का अस्तित्व तो था किन्तु यहाँ दासों की वैसी बुरी अवस्था नहीं थी जैसी प्राचीन यूनान तथा रोम अथवा अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के अमेरिका में थी। जहाँ इन पाश्चात्य देशों का उच्च वर्ग अपने दासों के साथ क्रूरतम व्यवहार करते थे, वहाँ प्राचीन भारतीय समाज में पारिवारिक भृत्यों तथा दासों में भेद करना संभव नहीं था। सम्भवतः चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आने वाले यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने अपने भारत विवरण में दासों के अस्तित्व तक का उल्लेख नहीं किया है।

बौद्धयुगीन पालि पिटक तथा समकालीन संस्कृत साहित्य से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में दासों का क्रय विक्रय तथा दान सामान्य प्रचलन में था। राजकुल, धनाढय नागरिक परिवार तथा सामान्य ग्रामीण घरों में दास दासी रखते थे। तत्कालीन साहित्य में दास दासी क्रय विक्रय के अनेक उदाहरण मिलते हैं। नन्द जातक में एक सद्धिविहारिक (बौद्ध विहार का अन्तेवासी) की तुलना शत मुद्रा क्रीत दास से की गयी है। सत्तुभस्त जातक के अनुसार जब एक ब्राह्मण ने भिक्षा मांग कर सात सौ कार्षापण अर्जित किए तो उसने इन मुद्राओं से दास दासियाँ खरीदने का विचार किया। परन्तु इस प्रसंग में दास दासियों की संख्या का उल्लेख न होने से एक दास अथवा दासी के निश्चित मूल्य का पता नहीं चलता। नन्द जातक के एक उल्लेख से पता चलता है कि एक दास का मूल्य लगभग एक सौ कार्षापण रहा होगा। स्वस्थ दास का मूल्य दुर्बल शरीर वाले की अपेक्षा कुछ अधिक होगा। इसी प्रकार एक सामान्य रूप रंग वाली दासी की तुलना में रूपवती दासी का मूल्य भी अधिक होता होगा। विक्रय और क्रेता की आवश्यकताओं अथवा परिस्थितियों का प्रभाव भी दास दासी के मूल्य निर्धारण में होता था।

भारतीय समाज में दास दासी क्रय के समान दास दासी का दान भी अति प्राचीन काल से प्रचलित था। वैदिक युग मे राजा यज्ञ एवं राज्याभिषेक समारोहों के अवसर पर अपने पुरोहितों को बड़ी संख्या में दास दासी प्रदान करते थे। महाभारत काल में महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ में नियुक्त 88000 ब्राह्मण स्नातकों को 30–30 दासियों का दान दिया था। पालि पिटकों में भी दास दासी दान के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इस प्रथा के प्रचलन के कारण ही भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के लिए दान में दास अथवा दासी स्वीकार करने का निषेध किया। जुण्ह जातक के अनुसार एक राजा ने ब्राह्मण को अन्य सामग्री के साथ एक सौ दासियाँ दान में दी। क्षत्रप उषवदात के नासिक अभिलेख में क्षत्रप नरेश नहपान द्वारा ब्राह्मणों को दान में कन्या प्रदान करने का उल्लेख मिलात है। ये कन्याएं अवश्य ही दासियाँ रही होंगी।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

दासता के कारण तथा दास स्वामियों का व्यवहार

बुद्धयुगीन साहित्य में अनेक प्रकार के दासों का वर्णन है, जिनसे भारतीय समाज में इस प्रथा के उद्‌भव एवं विकास के कारणों का अनुमान लगाया जा सकता है। त्रिपिटकों में आठ प्रकार के दासों का उल्लेख किया गया है अर्थशास्त्र में उनकी संख्या पाँच तथा मनुस्मृति में सात कही गई है। इन साक्ष्यों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि दास प्रथा के उद्‌भव के मूल कारण युद्ध, धनाभाव, दुर्भिक्ष तथा ऋण ग्रस्तता थे। समाज में दासों के अस्तित्व का सर्वप्रथम कारण युद्ध थे। युद्ध में एक पक्ष की विजय और दूसरे की पराजय होती थी। फलस्वरूप विजयी शासक के सैनिक पराजित पक्ष के सैनिकों तथा नागरिकों को बन्दी बनाकर ले जाते थे। इन युद्धबन्दियों का जीवन विजयी राजा की दया पर निर्भर होता था। इन्हें विजित शासक के यहाँ आयुपर्यन्त दास बनकर रहना पड़ता था। मनु ने इस श्रेणी के दासों को ध्वजहृत की संज्ञा दी है। युद्धबन्दियों में कुछ तो बेच दिए जाते थे और अन्य दान में दिए जाने लगे। इन दोनों प्रकार के दासों का वर्णन मिलता है। कई परिस्थितियों में दासत्व स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता था। जब किसी परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती थी तो गृहस्वामी अपनी पत्नी, सन्तान अथवा स्वयं को बन्धक रखते थे। दुर्भिक्ष के दिनों में भी ऐसा होता था जब भूखवश लोगों को दास बनने के लिए बाध्य होना पड़ता था। ऋण के बोझ से दबे व्यक्ति भी ऋणमुक्ति के लिए दासत्व का सहारा लेते थे। इस स्थिति में वे ऋणदाता से ऋणमुक्ति के बदले दासत्व स्वीकार करते थे, अथवा स्वयं किसी परिवार में बन्धक रहकर महाजन का कर्ज चुकाते थे। दासों का एक वर्ग ऐसा था जो जन्मदास कहलाता था। माता-पिता के दास होने से उन्हें भी दास होना पड़ता था। इससे प्रतीत होता है कि पराधीन माता-पिता की सन्तान को स्वतन्त्र नागरिकता का अधिकार नहीं था। कभी कभी अपराधियों को उनके अपराधों के दण्ड स्वरूप दास बना दिया जाता था।

'दास' शब्द पराधीनता का द्योतक है। दासों के सुख दुख के मालिक उनके स्वामी थे। दासों की स्थिति उनके मालिक के उग्र अथवा मृदु स्वभाव पर निर्भर थी। पालि साहित्य में उल्लेख है कि कुछ स्वामी अपने दासों की त्रुटियों के लिए उन्हें दण्डित करते थे जबकि कुछ अन्य उनके प्रति दया भाव दिखलाते थे। जिन दास स्वामियों का स्वभाव क्रूर था वे अपने दासों को कष्ट पहुँचाते थे। कटाहक जातक में वर्णित एक दास भाग्यवश अपने स्वामी का भांडागारिक बन गया, किन्तु उसे सदा इस बात का भय बना रहता था कि न जाने किस क्षण भाग्य उसका साथ छोड़ दे। वह सदैव सोचा करता था कि क्या उसका स्वामी उसे भांडागारिक बनाकर रखेगा? किसी न किसी दिन उसे उसमें कोई त्रुटि दिखलायी पड़ी तो उसे मार पड़ेगी, वह बन्दी बना लिया जाएगा, उसके शरीर को दागा जाएगा और उसे दासों जैसा भोजन खाने के लिए दिया जाएगा। एक अन्य कथा में एक दासी को उसका स्वामी मजदूरी करने के लिए भेजता था। एक दिन दुर्भाग्यवश उसके कोई कार्य नहीं मिला। उसके स्वामी ने उसे घर से बाहर फेंक दिया और उसे कोड़े लगाये। मनु ने भी स्वामियों को यह अधिकार प्रदान किया है कि वे अपराध करने पर अपने दासों को रज्जु प्रहार से दण्डित करें, परन्तु समाज में ऐसे भी व्यक्ति थे जो अकारण दासों को पीड़ा पहुँचाते थे। अंगुत्तर निकाय में उल्लेख मिलता है कि क्रूर स्वामियों के दास जब कार्यरत रहते, तो दण्ड के भय से उनके मुख अश्रुपूर्ण रहते थे और कई तो रुदन भी करते रहते थे। तक्क जातक में वाराणसी की एक श्रेष्ठी कन्या का उल्लेख है जो अत्यन्त क्रूर थी और अकारण अपने दासों तथा कर्मकारों को मारती रहती थी। वेस्सन्तर जातक में एक क्रूर ब्राह्मण द्वारा दास दासी को कष्ट देने का मार्मिक वर्णन है- 'एक ब्राह्मण को राजा वेस्सन्तर ने अपने पुत्र एवं पुत्री को दान में दे दिया। वह लोभी ब्राह्मण उन दोनों के हाथ लता से बांधकर और उसका एक छोर स्वयं पकड़कर उन्हें खींचता हुआ ले चला। उसने एक हाथ में डंडा भी पकड़ रखा था। उसे लम्बा मार्ग तय करना था, अतः जब रात्रि का आगमन हो जाता, तो वह उन दोनों बच्चों को पौधों से बांध देता और स्वयं वन जन्तुओं के भय से किसी पेड़ पर चढ़ जाता। उपरोक्त वर्णन में कितनी सत्यता है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बौद्ध लेखकों ने ब्राह्मणों को बदनाम करने के लिए शायद उनके सामान्य दोष को भी बढ़ा चढ़ा कर वर्णित किया है।

जातक कथाओं से यह इंगित होता है कि समाज में क्रूर दासपतियों की संख्या कम ही थी। सामान्यता: दासों का जीवन दुखमय नहीं था। धर्मप्रधान समाज में दास तथा कर्मकरों के साथ सद्व्यवहार किया जाता था और उन्हें अच्छा भोजन मिलता था। किसी-किसी दास को तो स्वामी अपने परिवार के सदस्य की ही भांति रखता था। कटाहक एक दासपुत्र था, परन्तु अपने स्वामिपुत्र के साथ रह कर उसने पढ़ना लिखना सीखा और उसे दो तीन शिल्पों का ज्ञान भी हो गया। अन्त में उसे परिवार का भांडागारिक बना दिया गया। जब एक राज पुरोहित को राजा ने वर मांगने को कहा तो उसने घर जाकर अपनी पत्नी, पुत्र और दासी से पूछा- 'राजा ने मुझे वर दिया है, मैं क्या मांगू?' दासी ने कहा- 'मेरे लिए ऊखल, मूसल और सूप मांगना।' जब एक ब्राह्मण कुमार की मृत्यु हो गयी और उसके शव का अग्नि संस्कार किया जाने लगा तो उस परिवार की दासी के शुष्क नेत्रों को देखकर एक व्यक्ति ने कहा- 'नि:सन्देह तुम्हारे स्वामी के पुत्र ने तुम्हें अपवचन कहा होगा, मारा होगा, कष्ट दिया होगा, इसी कारण तुम प्रसन्न हो, तुम्हें रोना नहीं आ रहा है।' उस दासी ने उत्तर दिया- 'स्वामी, आप ऐसे वचन न बोलें, मेरे साथ इस प्रकार की बातें नहीं हुई हैं, मेरे स्वामी के पुत्र के हृदय में तो मेरे लिए क्षमा, प्रेम और दया की भावनाएँ थीं और वह मेरे लिए उसी प्रकार थे जिस प्रकार कोई पुत्र माँ का स्तनपान कर पलता है।' नन्द जातक में नन्द नामक दास का वर्णन अपने स्वामी के अनन्य विश्वासपात्र के रूप में किया गया है। इस प्रकार के उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश स्वामी अपने दासों के प्रति मानवोचित व्यवहार करते थे। प्राचीन भारत के विधिनिर्माताओं ने भी दासों के हितों की उपेक्षा नहीं की है। कौटिल्य ने यह व्यवस्था दी है कि दासों के प्रति दुर्व्यवहार अपराध माना जाएगा। 'यदि कोई स्वामी अपने दास को मारता है, अथवा उससे निम्न स्तर का काम लेता है, तो उसे अपने दास के क्रय-मूल्य से वंचित कर दिया जाएगा। यदि कोई स्वामी दास कन्या अथवा बन्धक में दी गयी लड़की के साथ बलात्कार करता है तो उसे न केवल क्रय मूल्य से ही वंचित होना पड़ेगा वरन दण्ड के रूप में शुल्क भी देना पड़ेगा।'

जातकों में गृहस्वामी के युवा पुत्रों और उनकी युवती दासियों के प्रेम सम्बन्धों के विवरण भी मिलते हैं। इस विषय में कौटिल्य का यह मत है कि यदि किसी दासी पुत्री को अपने स्वामी से गर्भ हो जाए तो उस अवस्था में वह अपनी दासता से मुक्त मानी जाएगी। इस विधान से प्रतीत होता है कि संभवत: दासी कन्या अपने स्वामी की पत्नी बन जाती होगी। जातक कथाओं से इस अनुमान का समर्थन होता है। तिस्सकुमार राजगृह के एक धनाढ्य श्रेष्ठि का एकमात्र पुत्र था। जब वह प्रव्रजित होकर भिक्षुसंघ में प्रविष्ट हुआ, तो उनके माता-पिता को घोर कष्ट हुआ। उस परिवार की एक दासी कन्या ने श्रेष्ठि दंपति के कष्ट से द्रवित होकर तिस्सकुमार को सन्यासमार्ग से विरत करने का निश्चय किया। श्रेष्ठिपुत्र दासी कन्या के रूप पर मोहित हो गया और उसने भिक्षु जीवन का परित्याग कर दिया। उद्दालक जातक में भी एक राजपुरोहित के दासी प्रेम का वर्णन है। राज पुरोहित को अपनी प्रेमिका दासी कन्या से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम उद्दालक रखा गया। जब वह व्यस्क हुआ और बड़ा ज्ञानी तथा तपस्वी बन गया। उसकी भेंट अपने पिता से हुई। पिता ने अपने पुत्र का परिचय पाकर कहा- 'तुम ब्राह्मण हो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।' इस वर्णन से यह संकेत मिलता है कि दासी पुत्रों को अपने पिता की जाति की सदस्यता मिल जाती होगी। कोशल नरेश का विवाह वासभखतिया से हुआ था जो शाक्यवंशी महानाम क्षत्रिय की एक दासी पुत्री थी। यद्यपि यह सम्बन्ध कष्टपूर्वक संपन्न किया गया था, परन्तु वासभखत्तिया के पुत्र को कोशल का युवराज पद प्राप्त हुआ।

जातकों ने उच्चवर्ण की कन्याओं के साथ दासों के प्रेम का भी उल्लेख मिलता है। चुलल्क सेट्ठि जातक के अनुसार राजगृह के एक श्रेष्ठि की कन्या को अपने दास से प्रेम हो गया। इस भेद के खुल जाने के भय से श्रेष्ठि कन्या अपने प्रेमी के साथ भाग गयी। उसी दास से उसे दो पुत्र हुए। जब प्रथम पुत्र कुछ बड़ा हुआ तो उसको अपने सम्बन्धियों के विषय में जिज्ञासा हुई। उसने अपनी माता से इस सम्बन्ध में पूछा तो उसने उत्तर दिया- 'पुत्र, तुम एक बड़े श्रेष्ठि के दौहित्र हो।' जब पुत्र ने अपने नाना के घर

जाने की जिद्द की तो उसके माता पिता राजगृह गए। परन्तु न तो पुत्री को पिता के सम्मुख जाने का साहस हुआ और न पिता को ही पुत्री को देखने की इच्छा हुई। अन्त में श्रेष्ठि ने अपने दौहित्रों को तो अपने पास रख लिया किन्तु अपनी पुत्री और दामाद को पर्याप्त धन देकर विदा कर दिया। वस्तुतः तत्कालीन समाज में उच्च वर्ण की कन्या का निम्नवर्ग के किसी युवक से प्रेम अथवा विवाह करना अपराध के समान था। इस विषय में दासों की अपेक्षा दासियों की स्थिति अधिक अच्छी थी, क्योंकि यदि वे सुन्दर होतीं तो उन पर उनके युवा स्वामियों के आसक्त होने की अधिक संभावना रहती थी।

दासों के कार्य

तत्कालीन साक्ष्यों के अनुसार जो दास खेत, कर्मशाला अथवा दुकान में काम करते थे उनको कम्मन्त दास कहा जाता था; जो वस्त्र बुनने और धोने का कार्य करते थे वे क्रमशः पेशकरदास और रजकदास कहलाते थे। इसी प्रकार दासियों के लिए नारी दासी, देवदासी, कुम्भदासी, वन्नदासी, वीहिकोट्टिकदासी इत्यादि सम्बोधन का प्रयोग मिलता हैं। तत्कालीन समाज में दासों से विभिन्न प्रकार के कार्य लिए जाते थे। उन दासों की संख्या अल्प थी जो कटाहक के समान भांडागारिक, कोषाध्यक्ष अथवा अपने स्वामी के निजी सचिव के पदों पर नियुक्त किए जाते थे। अधिकांश दास प्रायः गृहकार्यों में नियुक्त थे जिनके कार्य प्रत्येक परिवार की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार के होते थे। राजकुलों अथवा धनाढ्य श्रेष्ठिकुलों में नियुक्त तथा सामान्य गृहपतियों के घर काम करने वाले दासों के कार्य समान नहीं हो सकते थे। दासों से प्रायः दो प्रकार के कार्य लिये जाते थे- एक गृहकार्य और दूसरा अपने स्वामी की सेवा। पालि पिटकों में दास दासियों को अनेक प्रकार के गृहकार्यों में संलग्न वर्णित किया गया है, जैसे- रसोइये का काम (पाचक-कर्म), जलाशय से जल लाना, बर्तन धोना, अन्नागार की रखवाली करना और धूप में धान सुखाना इत्यादि। कृषकों की दासियाँ अपने स्वामी के लिए खेत में भोजन पहुँचाती थीं। किसी परिवार में दास को मजदूरी करने के लिए अन्यत्र भेजा जाता था। दास दासियों द्वारा सेवा सम्बन्धी कई कार्यों का भी उल्लेख मिलता है। धनी परिवारों की गृहस्वामिनियाँ जब स्नान के लिए जलाशय की ओर प्रस्थान करतीं थी, तो दासियाँ उनका साथ देतीं थी। जब वे जलाशय में प्रवेश करतीं, तो दासियाँ उनके वस्त्राभूषणों की रखवाली करतीं थी। गृहस्वामी अथवा गृहस्वामिनी के भोजन करते समय सभी आवश्यक कार्य दास दासियों द्वारा ही संपन्न किए जाते थे। कौटिल्य ने दास दासियों से गर्हित कर्म कराने का निषेध किया है। उन्होंने दास दासियों से मुर्दा ढोने, मलमूत्र साफ कराने, उच्छिष्ठ भोजन की सफाई और नग्न स्नान के समय दासी से काम लेने आदि का निषेध किया है।

दास से मुक्ति

युद्धों के फलस्वरूप बने दास अपने पक्ष की विजय हो जाने पर स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते थे। परन्तु ऐसा विशेष परिस्थितिवश ही संभव था। यह भारतीय समाज की अपनी विशेषता रही है जिससे अंततः दासों का दासत्व समाप्त कर दिया जाता था। पालिपिटकों से ज्ञात होता है कि दास द्वारा संन्यास स्वीकार कर लेने अथवा अपने स्वामी की इच्छा, अथवा अपने स्वामी को मुक्ति शुल्क चुका देने से दास संन्यासी हो जाता था तो वह अभिवादन और उच्चासन तथा भिक्षु जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं, यथा- चीवर, पिण्ड पात्र, आसन आदि का अधिकारी माना जाता था। सोणनन्द जातक में उल्लेख है कि एक ब्राह्मण गृहपति ने प्रव्रज्या ग्रहण करने के समय अपने सभी दासों को मुक्त कर दिया। वेस्सन्तर जातक के अनुसार शुल्क देकर दासत्व से मुक्ति सम्भव थी। वेस्सन्तर ने जब अपनी सन्तान दानस्वरूप एक ब्राह्मण को दे दी तो अपने पुत्र से कहा- 'पुत्र, जाओ तुम अपनी मुक्ति के लिए इस ब्राह्मण को शत स्वर्ण निष्क देना और यदि तुम अपनी भगिनी को भी मुक्त करना चाहोगे तो उसके लिए ब्राह्मण को दास-दासी, हाथी, घोड़े, बैल और सौ-सौ की संख्या में स्वर्ण निष्क देना।' दासत्व से मुक्ति का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है। कौटिल्य के अनुसार जो दास दंड स्वरूप अथवा युद्धबन्दी होने के कारण दास बनाये जाते थे वे शुल्क देकर मुक्त हो सकते थे। क्रीतदास को उतना ही शुल्क देना पड़ता था

जितने में उसके स्वामी ने उसे खरीदा हो। यदि किसी को अर्थदंड चुकाने की असफलता के कारण दास बनना पड़ता था, तो अर्थदंड की राशि का भुगतान कर देने पर उसे दासत्व से मुक्ति मिल जाती थी। यदि दास का स्वामी मुक्ति शुल्क लेकर भी दास को मुक्त नहीं करता था तो उसे द्वादश पण दंड देना पड़ता था। यदि दासी को अपने स्वामी से सन्तान हो जाती थी तो माता और सन्तान दोनों स्वतन्त्र माने जाते थे।' मज्झिम निकाय के रट्ठपाल सुत्त से ज्ञात होता है कि अपने स्वामी को कोई सुखद संवाद देने से भी कभी कभी दास को पुरस्कार स्वरूप मुक्त कर दिया जाता था। दासों को मुक्त करने की प्रथा का उल्लेख नारद-स्मृति में भी मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में दासत्व से मुक्ति की परम्परा भी प्रचलन में थी।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि बौद्धकालीन साहित्य तत्कालीन समाज के वर्ग विभाजन तथा दास प्रथा पर समुचित प्रकाश डालता है।

<u>सन्दर्भ</u>

1. चानन, डी.आर., सेलेवरी इन एंशियंट इण्डिया, पृ. 15-18
2. अर्थशास्त्र, 3/13
3. मनु स्मृति, 8/413
4. महाभारत, सभापर्व, 52/45-46
5. जातक, 4, पृ. 99, (ददामि ते गामवरानि पञ्च दासीसतं गवं सतानि)।
6. जातक, 1, पृ. 200; 4, पृ. 22, 99; 6, पृ. 285, 545-48; फीक, आर. पूर्वोक्त, पृ. 307
7. अर्थशास्त्र, 3/13
8. मनु-स्मृति, 8/415
9. जातक, 1, पृ. 451
10. जातक, 1, पृ. 402
11. मनु-स्मृति, 8/299
12. अंगुत्तर निकाय, 2, पृ. 207-8
13. जातक, 6, पृ. 548-73
14. जातक, 1, पृ. 451
15. जातक, 2, पृ. 428
16. जातक, 3, पृ. 167
17. अर्थशास्त्र, 3/13
18. वही
19. जातक, 1, पृ. 156-57
20. कट्ठारि-जातक (7); भद्दसालजातक, 465
21. खुद्दक-निकाय, 1, पृ. 139; जातक, 1, पृ. 468
22. सामन्त पासादिक, 1/215; चानन, डी.आर., पूर्वोक्त, पृ. 70
23. चानन, डी.आर., पूर्वोक्त, पृ. 70-72
24. चुल्लवग्ग, 4/4/7; 6/4/1
25. जातक, 5, पृ. 284
26. जातक, 1, पृ. 453
27. जातक, 1, पृ. 484
28. जातक, 3, पृ. 163
29. जातक, 1, पृ. 402
30. जातक, 1, पृ. 383
31. जातक, 1, पृ. 456
32. अर्थशास्त्र, 3/13
33. दीघनिकाय, 1, पृ. 60-61
34. जातक, 6, पृ. 546-47
35. अर्थशास्त्र, 3/13
36. मज्झिम निकाय, 2, पृ. 62
37. नारद-स्मृति, 5/29-34

RRIJM 2015, All Rights Reserved